पेपर - भारत में उपनिवेशवाद

अध्याय - ब्रिटिश भारत में किसान और आदिवासी विद्रोह

लेखक - प्रमोद कुमार

कॉलेज/विभाग - शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

विषय-सूची :

1. परिचय
2. किसान विद्रोह
3. किसान विद्रोह के असफलता के कारण
4. आदिवासी विद्रोह
    4.1 खासी विद्रोह (1829)
    4.2 खामती विद्रोह
    4.3 नागा विद्रोह
    4.4 कोल विद्रोह
    4.5 खौड़ विद्रोह
    4.6 मुंडा विद्रोह
    4.7 भील विद्रोह
5. आदिवासी विद्रोह के असफलता के कारण
6. परिणाम
7. निष्कर्ष
8. संदर्भ सूची

1. परिचय

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की राजनीतिक दशा अत्यधिक कमजोर और पतनोन्मुख थी। 1707 में मुग़ल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुग़ल साम्राज्य का पतन तेजी से होने लगा था। 1615 में इंग्लैंड के सम्राट जेम्स प्रथम की ओर से सर टॉमस रो जहांगीर के दरबार में पहुंचा और व्यापारिक फैक्ट्री खोलने की अनुमति मांगी। मुग़लशासक जहांगीर द्वारा कम्पनी खोलने की अनुमति दे दी गयी। कालांतर में धीरे -धीरे यह कम्पनी व्यापार के अलावा अपना ध्यान राजनीतिक साम्राज्य स्थापित करने पर देने लगी, जिसकी कूटनीतिक चाल, अंततः 1757 के प्लासी युद्ध एवं 1764 के बक्सर युद्ध के बाद, बहुत हद तक सफल भी रही। इसके बाद ब्रिटिश शासकों द्वारा अपनाई गई औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों एवं भू-राजस्व की नई प्रणाली ने किसानों और आदिवासियों की कमर तोड़ दी। जिसकी प्रतिक्रिया में किसानों और आदिवासियों का ब्रिटिश शासन के साथ सशस्त्र संघर्ष हुआ। ऐसा नहीं कि मुगलकालीन भारत के लिए किसान विद्रोह अनजाने थे, वास्तव में अठारवीं सदी के पूर्व में तो बहुत फैले, किसानों के निर्वाह की व्यवस्थाओं को प्रभावित किया तथा मुगलों की प्रान्तीय नौकरशाही उसकी वसूली के लिए अधिकाधिक आततायी और कठोर होती गयी [1]। जब उपनिवेशी व्यवस्था ने अपनी शक्ति बढ़ाई तथा भूमि राजस्व सम्बन्धी अनेक प्रयोग किए जिनका, एकमात्र उद्देश्य मालगुजारी की आय को बढ़ाना था, तब यह प्रवृति और भी व्यापक हो उठी. इसलिए उपनिवेश शासन के प्रतिरोध का इतिहास उसी के समान पुराना है।

2. किसान विद्रोह

अठारहवीं सदी के अंतिम और उन्नीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में कंपनी की सरकार के मालगुजारी संबंधी सुधारों ने भारत के ग्रामीण समाज को बुनियादी तौर पर प्रभावित और परिवर्तित किया। इस नये ढाँचे की एक झलक पाने के लिए डेनियल थॉनएर और डी.एन धनगर द्वारा विकसित सामान्य मॉडल[2] का सहारा ले सकते हैं जिसमें हम निश्चित ही क्षेत्रीय भिन्नताओं की सम्भावना रखेंगे। इस मॉडल में पहला समूह बड़ी जागीरों, अक्सर अनेक गांवों पर आधारित जागीरों, पर मालिकाना अधिकारों से सम्पन्न जमींदारों का था। ये एक अनुपस्थित लगान भोगी वर्ग के लोग थे, जिनकी भूमि के प्रबंध या कृषि के सुधार में दिलचस्पी नहीं थी। दूसरे समूह में धनी लोग आते थे, जिनको आगे दो समूहों में बांटा जा सकता था: धनी भूस्वामी और धनी पट्टेदार वर्ग (tenant) में। जमींन पर पहले उपसमूह को मालिकाना हक़ प्राप्त थे, पर आमतौर पर अपने ही गांव में और वे खेती में खुद भाग लेते थे। दूसरी ओर धनी पट्टेदारों के पास काफी बड़ी जोतें होती थीं, उनके दखली अधिकारों को सुरक्षा प्राप्त होती थी और वे अपने जमींदारों को नाममात्र लगान देते थे। तीसरे समूह में मझोले किसान आते थे जिनको निम्न समूहों में बांटा जा सकता था : (१) मझोले आकार के जोतों के स्वामी या आत्मनिर्भर किसान जो पारिवारिक श्रम के सहारे काम करते थे ,(२) बड़ी जोतों वाले पट्टेदार जो दूसरी विशेष सुविधाओं से संपन्न पट्टेदार से अधिक लगान देते थे। चौथे समूह में गरीब किसान आते थे अर्थात

[1] Ray Chaudhuri , (1982). The State and the Economy ,The mugal india in the Cambridge Economy History of India .vol.1, ed.Tapan RoyChaudhuri and Irfan Habib, 172-193,Cambridge University Press.

[2] Dhanagare ,D.N (1991),peasant movements in india, 1920-1950,p-14-15, Oxford University Press,Delhi.

ऐसी छोटी जोतों के स्वामी जो परिवार के निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होती थी, छोटी जोतों वाले पट्टेदार जिनको पट्टेदारी की कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं थी तथा बँटाईदार या गैर-दखली कास्तकार। धनगर के अनुसार पाँच समूह मज़दूरों का होता था।[3] अर्थात यह एक पिरामिड के आकर का खेतिहर समाज था, जिसमें 65-70 प्रतिशत खेतिहर आबादी जमींन की मालिक नहीं थी। इसलिए अठारहवीं सदी के अंतिम या 19 वीं सदी के आरंभिक वर्षो में भारत में कम्पनी की सरकार के भूमिसुधारों और मालगुजारी की भारी मांगों ने पूरी ग्रामीण आबादी को इतनी बुरी तरह प्रभावित किया कि देश के विभिन्न भागों में किसान वर्ग के सभी हिस्सों द्वारा अनेक हिसंक प्रतिरोधों में भाग लिया गया ।

ब्रिटिश राज की पहली सदी के दौरान सबसे पहले विद्रोह का एक सिलसिला देखा जा सकता है, जिनको कैथलीन गफ ने 'पुनः प्रतिष्ठा विद्रोह'[4] कहा है। इसका कारण है कि इनका आरम्भ असंतुष्ट स्थानीय शासकों, मुग़ल अधिकारियों और सम्पत्ति से वंचित जमींदारों ने किया। अधिकांश मामलों में उनको स्थानीय किसानों का समर्थन मिला, जिनका पहला उद्देश्य पुरानी व्यवस्था को बहाल करना था। इसी क्रम में 1778-1781 के दौरान अवध के अपदस्थ नबाब वजीर अली के विद्रोह का उल्लेख किया जा सकता है।[5] वहाँ और खासकर अवध के उत्तरी और दक्षिणी भागों में 1830 के दशक तक कठिनाइयाँ जारी रहीं और मालगुजारी के लिए समस्याएँ खड़ी होती रहीं। उसके बाद 1842 में बुंदेला राजपूत सरदारों ने विद्रोह किया, जिससे कुछ वर्षो तक इस क्षेत्र में खेती ठप रही और व्यापार मार्ग खतरों से भरे रहे। दक्षिण में उत्तरी अकार्ट के तिरुनेल्लेवाली जिले में और आंध्र के समर्पित जिलो में 1799 और 1805 के बीच मद्रास सरकार को स्थानीय सरदारों का कड़ा विद्रोह झेलना पड़ा जिनको पालेगर कहा जाता था। जहाँ कम्पनी की सरकार उन्हें केवल सैन्य सेवा के बदले वन्दोवस्त पानेवाले जमींदार मानती थी, वहीं स्थानीय किसान समाज में उनको ऐसे प्रभुतासम्पन्न शासक समझा जाता था, जिन्होंने सत्ता मुगलों से पहले के विजयनगर साम्राज्य से विरासत में पाई थी। इसलिए जब उन्होंने कम्पनी के दस्तों का विद्रोह किया तो स्थानीय किसान समाज ने उनका न केवल खुलकर समर्थन किया ,बल्कि उनको लोकनायक तक माना।[6] दक्षिण में ही पक्षसी राजा का विद्रोह हुआ, जिसने १७९६-१८०५ के दौरान मालाबार को हिलाकर रख दिया और फिर ट्रॉवनकोर रजवाड़े के दीवान वेल्लु थंपी ने विद्रोह कर किया, जिसकी कमान में पेशेवर सिपाहियों और किसान स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना थी। लेकिन इन सभी हथियारबन्द विद्रोहों को अंततः ब्रिटिश सेना ने कुचल डाला। कुछ मामलों में विद्रोही को उनके अधिकार मालगुजारी की कुछ अधिक

---

[3] Bandyopadhyay, S.2009 . From Plassey to Partition: A History of Modern India p-158-159,orient blakswan, new delhi.

[4] Ibid p-159

[5] Misra,B.B.1978, the Indian middle classes: their growth in modern times; p-302,Oxford University Press,Delhi.

[6] Basu,Aparna. 1974. The growth of educational and political development in india:1898-1920,p-106, Oxford University Press, New Delhi.

नरम शर्तों के साथ वापस लौटा दिए गए। लेकिन सामान्य ढंग से कहे तो उन्हें गफ के शब्दो में " निवारक बर्बरता " के साथ कुचल दिया गया।[7]

किसानों ने अक्सर पहल करके ब्रिटिश राज का प्रतिरोध किया। बंगाल के उत्तरी जिलों में 1783 का रंगपुर विद्रोह ऐसे विरोध का एक आदर्श उदाहरण है। मालगुजारी की वसूली के ठेकों वाले आरंभिक दिनों में मालगुजारी की भारी मांगें करके और अक्सर अवैध करों की वसूली करके मालगुजारी और कंपनी के अधिकारी किसानों का दमन करते थे। देवी सिंह या गंगागोविंद सिंह जैसे मालगुजार सबसे बुरे अपराधी थे, जिन्होंने रंगपुर और दिनाजपुर जिलों के गांवो में आतंक का साम्राज्य फैला रखा था। किसानो ने पहले तो उद्धार की गुहार लगाते हुए कंपनी की सरकार को प्रार्थना-पत्र भेजा। लेकिन जब उनकी न्याय की प्रार्थना अनसुनी कर दी गयी, तब उन्होंने अपने आपको संगठित किया, अपना एक नेता चुना, एक बड़ी सेना तैयार की, आदिम तीर-कमान और तलवारों से लैश किया, स्थानीय कचहरी पर हमला किया अनाज के गोदाम लूटे और कैदियों को जबरन छुड़ा लिया। सुगत बोस ने जिन चीजों को "औपनिवेश पूर्व शासन व्यस्था के प्रतीक" कहा है, उनके नाम पर विद्रोहियों ने अपने आंदोलन को वैध ठहराने के प्रयास किए। उन्होंने अपने नेता को " नबाव " कहा , अपनी सरकार बनाई और अपने आंदोलन का खर्च उठाने के लिए कर वसूल किये। देवी सिंह की अपील पर वारेन हेंटिगज कंपनी की सरकार के विद्रोह के लिए दस्ते भेजे। लेकिन उसके निर्मम दमन के बाद मालगुजारी ठेका की व्यवस्था में कुछ सुधार भी किये गए।[8]

इस कल के अनेक किसान आंदोलनों में धर्म ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और निरूपण का ऐसा ढर्रा सामने रखा, जिसके सहारे किसानों ने ब्रिटिश राज को समझा और प्रतिरोध की धारणा विकसित की। इन समुदायों के लोगों को मुग़ल काल में माफ़ी की जमीन मिली हुई थी लेकिन ब्रिटिश कंपनी की मालगुजारी की भारी मांगों से माफ़ी की जमीन की जब्ती प्रभावित हुई।

संन्यासी - फ़क़ीर विद्रोह था, जिसने 1763 और 1800 के बीच उत्तरी बंगाल को तथा बिहार के साथ लगे क्षेत्रों को हिलाकर रख दिया। ये अपने लड़ाकू परम्परा के लिए विख्यात थे। इसलिए 1760 के आरम्भ से ही लेकर 1800 तक सशस्त्र बलों के बीच बंगाल और बिहार के एक व्यापक क्षेत्र में बार -बार संघर्ष हुए। विद्रोह जब चरम सीमा पर पहुँचा तो भागीदारों की संख्या बढ़कर पचास हज़ार तक जा पहुँची थी , हालांकि 1800 के बाद यह कम होने लगी। लेकिन पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह जिले के शेरपुर परगना में एक और आंदोलन उठ खड़ा हुआ ; वहाँ करीमशाह और फिर उसके वारिस टीपू शाह ने गारो, हजंग और हादी जैसे हिन्दू रंग में रंगे कबीले के बीच एक नये धार्मिक आंदोलन आरम्भ किये। इस क्षेत्र में कम्पनी के शासन ने जब जड़ें जमाईं और स्थाई बंदोवस्त के तहत जमींदारी व्यवस्था और भी मजबूत हुई, तो जमींदारों द्वारा वसूले जा रहे अवैध करों और डिप्टी कलेक्टर डनबर द्वारा किए गये नए मालगुजारी बंदोवस्त के विरुद्ध किसानों की शिकायतें बढ़ती गयीं। ऐसी स्थिति में 1824 के आसपास टीपू के पागलपंथी संप्रदाय ने एक नयी व्यवस्था और न्यायसंगत

[7] Seal, A.1968, The emergence of Indian nationalism:competition and elaboration in later nineteenth century. P-25, Cambridge; Cambridge University Press.

[8] Viswanathan, gauri. 1989. Masks of conquest: literary study and british rule in india. Columbia university press, Newyork.

लगानो का वादा पेश किया। यह नयी भावना धीरे-धीरे पूरे क्षेत्र में व्याप्त हो गयी और इसने एक हथियारबन्द विद्रोह का रूप ले लिया, जिसको 1833 में सेना की मदद से कुचलना पड़ा।[9]

इन्हीं दिनों हाजी शरीया तुल्लाह के नेतृत्व में पूर्वी बंगाल के किसानों में फरजी आंदोलन नाम का एक और धार्मिक आंदोलन विकसित हुआ। लेकिन 1839 में शरीया तुल्लाह कि मृत्यु के बाद उनके बेटे दुधु मिया ने नेतृत्व सम्भाला और एक समतावादी विचारधारा के आधार पर किसानों को एकजुट किया। उसकी घोषणा थी कि सारी जमीन अल्लाह की है और इस कारण उसपर लगान या कर वसूल करना खुदाई कानून के विरुद्ध है।[10] उसने फरीदपुर ,बाकरगंज ,ढका ,पबना ,टिपरा ,जैसोर ,और नोवाखाली जिलों में ग्राम स्तर के संगठनों का एक जाल तैयार किया। 1840-50 के दशकों में जमींदारों और निलहों के साथ लगातार हिंसक टकराव होते रहे।

जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध किसानों का प्रतिरोध बंगाल तक ही सीमित नहीं था। मालाबार में जन्मियों के खिलाफ मोपला किसानों की बगावत जारी रही। अंग्रेजों ने जब 1792 में मालाबार जीता, तो उन्होंने जमीन में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार पैदा करके भूमि-संबंधों को नया रूप देने का प्रयास किया । परम्परा व्यवस्था में जमीन मात्र पैदावार जेंमी और खेतिहर के बीच बराबर -बराबर बंट जाती थी। जेंमी की जमीन का एकमात्र स्वामी स्वीकार करके और उसे पट्टेदार को बेदखल करने का अधिकार देकर ब्रिटिश व्यवस्था ने इस बंदोवस्त को उलट-पुलट दिया और बाकी दो श्रणियों को पट्टेदारों और लगानदारों के स्तर तक गिरा दिया। इसके अलावा, अति -आकलन, अवैध करों के भारी बोझ तथा न्यायपालिका और पुलिस के जमींदार- समर्थक रवैये का अर्थ यह था कि के.एन पणिक्कर के अनुसार मालाबार के किसान "जमींदारों और राज्य की दोहरी वसूलियों के कारण बेहद बदहाली की दशाओं में रहते और काम करते थे.[11]

अवध के सीतापुर जिले में और मेवाड़ में किसानों ने क्रमश: १८६० और १८९७ में जमींदारों ने लगान में वृद्धि और गैर क़ानूनी वसूलियों का प्रतिरोध किया। [12] किसान विद्रोह में धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी। जैसे बिहार -बंगाल में संन्यासी-फ़क़ीर विद्रोह, फराइजी आंदोलन, मोपला विद्रोह आदि। इसलिए पूरी उन्नीसवीं सदी में ऐसी घटनाओं की एक श्रृंखला ग्रामीण गरीबों के विरोध और प्रतिरोध को व्यक्त करती थी।

लेकिन उद्गम और चरित्र के बारे में कोई भी सामान्यीकरण जोखिम का काम होगा। फिर भी एक बहुत व्यापक अर्थ में हम कह सकते हैं कि उपनिवेशी काल में बदलते आर्थिक सम्बन्धों ने किसानों का दुख बढ़ाया और उनकी तकलीफ उपरोक्त विभिन्न विद्रोहों में व्यक्त हुई। उपनिवेश - पूर्व काल में भारत की अर्थव्यवस्था

---

[9] Bandyopadhyay, S. 1997. From subject to citizen :reaction to colonial rule and the changing political culture of Calcutta in mid- nineteenth century. In history, literature and society:essays in honour of s.n mukherjee, ed. Mabel lee and Michael wilding, p-9-32, Manohar, New Delhi.

[10] Ray, Rajat K.1984. Social conflict and political unrest in Bengal,1875-1927. P-26, Oxford University Press, Delhi.

[11] Mehrotra, S.R. 1971,The emergence of Indian national congress. Vikas. New Delhi.

[12] Hardiman, David. 1981. Introduction to peasant resistance in india, 1858-1914. Pp- 23-26, Oxford University Press. Delhi.

जीवन निर्वाह की सोच पर आधारित थी ,किसान इससे परेशान नहीं होते थे कि उनसे कितना वसूल किया जा रहा है; दुर्लभता के माहौल में यदि उनकी मौलिक आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त पैदावार छोड़ दी जाती थी तो भी वे खुश रहते थे। लेकिन ब्रिटिश राज के दौरान यह नीति भंग करदी गई। अब ज्यादा जोरदार ढंग से अधिशेष वसूल किया जाने लगा। इससे किसानों के निर्वाह के बंदोवस्त प्रभावित हुए और फिर बार -बार किसान विद्रोह फूटे। जमींदारों की किसानों के उत्पीड़न की शक्ति ब्रिटिश राज के अंतर्गत काफी बढ़ी। उनके सैन्य बल पर वास्तव में कोई अंकुश नहीं लगा और जमींदार-दरोगा गठजोड़ के माध्यम से इनका शोषण होता रहा, जबकि नई अदालतों और लम्बी न्यायिक प्रक्रियाओं ने उनकी दमन की शक्ति को और अधिक बढ़ाया। जमींदारों को उत्पीड़न के ऐसे कारिंदे समझा जाने लगा जिनको राज्य का सरंक्षण प्राप्त था; इसलिए जमींदार विरोधी शिकायतें आसानी से अंग्रेजों के विरुद्ध भी होने लगीं। मालगुजारी की भारी मांग के कारण किसानों की ऋण आवयश्कता बढ़ी और इस बात ने ग्रामीण समाज के ऊपर सूदखोरों और सौदागरों की शक्ति को और बढ़ाया। बढ़ते कर्ज के कारण जमीनों से बेदखल होने लगे और जमीनें -गैर खेतिहर वर्गों के हाथों में जाने लगीं। रणजीत गुहा के शब्दों में जमींदार ,सूदखोर और राज्य इस "किसान पर प्रभुत्व का एक संशिलिस्ट तंत्र " बन गये।[13]

3. **किसान विद्रोह के असफलता के कारण :**

उन्नीसवीं सदी के किसान आंदोलन की सबसे बड़ी कमी यह थी कि किसान उपनिवेशवाद औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था को जानते -समझते नहीं थे। उनके पास न तो कोई विचारधारा थी और न ही कोई ठोस सामाजिक -आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम। किसान चाहे जितने जुझारू रहे हों, उनका संघर्ष समाज की पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं के दायरे में ही सिमटकर रह गया। किसी नए समाज की परिकल्पना नहीं थी, एक ऐसी परिकल्पना जो देश के तमाम नागरिकों को एक सामूहिक लक्ष्य के लिए संघर्ष करने को एकताबद्ध करती, एक दीर्घकालीन राजनीतिक आंदोलन को जन्म देती। कोई राष्ट्रीय स्तर नेतृत्व जिसके पास एक नए समाज के निर्माण की रूपरेखा हो, वही देश की तमाम जनता और किसानों को इकट्ठा कर सकता था और राष्ट्रव्यापी राजनीतिक संघर्ष छेड़ सकता था। इस तरह का कोई नेतृत्व भी नहीं था।

लेकिन किसान विद्रोह की यह कमजोरी आंदोलन के चरित्र पर कलंक नहीं है। वास्तव में यह किसानों की नासमझी का फल था। वे उपनिवेशवाद के शिकंजे को समझ नहीं सके थे। उस समय एक ऐसे बौद्धिक वर्ग की जरूरत थी जो उसमें राजनीतिक समझ पैदा करता, परन्तु उस समय यह वर्ग था ही नहीं, उभर जरूर रहा था। आगे किसानों का यह साम्राज्यवाद के प्रति विद्रोह अन्य राष्ट्रव्यापी आंदोलन के लिए बहुत ही लाभदायक साबित हुआ। जैसा कि मार्क्स ने कहा है, ब्रिटिश उपनिवेशवाद भारत में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का 'इतिहास का अचेतन हथियार 'बना।[14]

---

[13] Mehrotra, S.R. 1971 . The emergence of Indian national congress. p-413. Vikas. New Delhi.

[14] राय सत्या एम. १९८३ भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद (सं), पृ-१०३, हिंदी माध्यम कार्यवन्य निदेशालय , **दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली**

4. **आदिवासी विद्रोह**

भारत में ब्रिटिश राज के बाद यहाँ के आदिवासियों के साथ अनेक सशस्त्र संघर्ष हुए। जिनका प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा उनकी विशिष्ट, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में हस्तक्षेप किया जाना था। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप आदिवासी समुदाय और अंग्रेज सरकार के मध्य १९ वीं सदी में कई छापामार लड़ाइयाँ हुईं। बिपिनचंद्र के अनुसार "भ्रष्टाचार और अत्याचार के हथियारों से लैश औपनिवेशिक शासन ने जब आदिवासियों के इलाकों में घुसपैठ की, तो उनमें घोर असंतोष पैदा होना स्वाभाविक ही था। आमतौर पर आदिवासी शेष समाज से अपने को अलग- अलग रखते थे। लेकिन ब्रिटिश राज उनको पूरी तरह औपनिवेशिक घेरे के भीतर खींच लाया।[15] आदिवासी लोग जो अब तक आंतरिक स्वायत्तता की स्थिति में रहते थे, ब्रिटिश प्रमुख की स्थापना से वह समाप्त हो गयी। यह स्थिति आदिवासियों को स्वीकार न थी और धीरे- धीरे उनके विरोध पनपने लगे।

अंग्रेज प्रशासकों की मान्यता थी कि आदिवासी लोग अपनी सरकारों के अधीन हीन अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहे थे, किन्तु आदिवासियों का अपने मुखिया पर पूर्ण विश्वास था। परिणामस्वरूप १८१७ में चेरो ने और १८१९ में मुंडाओं ने उन जमींदारों के समर्थन में विद्रोह कर दिया, जिन्होंने अंग्रेजों ने शक्तियाँ हस्तगत कर ली थीं। अंग्रेजो ने प्रशासनिक एवं सामरिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आदिवासी क्षेत्रों में पुलिस थाने स्थापित किये, सड़कें बनवाईं, सैनिक छावनियाँ स्थापित कीं और उन लोगों को कंपनी कानूनों का पालन करने के लिए बाध्य किया गया। सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में नियुक्त राजस्व अधिकारियों एवं पुलिस कर्मियों की उन लोगों के प्रति सहानुभूति नहीं थी, बल्कि उनकी शोषण मनोवृति से ये लोग परेशान हो गये थे। दूसरी ओर औपनिवेशिक सरकार ने उन क्षेत्रों के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया। जिसका प्रतिकार आदिवासी समूहों द्वारा किया गया।

स्टीफन फक्स, जगदीश चन्द्र झा आदि विद्वानों ने जनजातियों के विद्रोह का प्रमुख कारण आर्थिक माना है। आदिवासी अपने जीवन निर्वाह के लिए वनों से शहद, फल, लकड़ी, और बांस आदि प्राप्त करते थे। बांस का समान बनाना, पशुओं का शिकार, तथा मछली पकड़ना इनका प्रमुख उद्योग थे। सरकार ने वनों को सरकारी सम्पत्ति घोषित किया और अब आदिवासियों को जंगल से अन्य वन उपज संग्रह करने की स्वतन्त्रता नहीं रही। इस प्रकार जंगल कानूनों के जरिये परम्परागत अधिकारों का अपहरण हुआ, जिनसे आदिवासियों की कठिनाइयाँ बढ़ीं। आदिवासी समूहों में खौड़ (उड़ीसा), संथाल (राजमहल पहाड़ियाँ), मुंडा, कोल (छोटानागपुर) एवं भील (महाराष्ट्र व राजस्थान) आदि प्रमुख थे।[16]

---

[15] चंद्र, विपिन,भारत का स्वंतंत्रता संघर्ष,पृ-14, हि. का. नि. देल्ली,

[16] ताराचंद ,भारतीय स्वंतंत्रता आंदोलन का इतिहास ,जी , पृ-3

प्रो. विपिनचंद्र ने लिखा है कि आदिवासी इलाकों में बाहरी लोगों और औपनिवेशिक राज की घुसपैठ ने उनकी पूरी सामाजिक व्यवस्था को ही उलट-पुलट दिया। उनकी जमीन उनके हाथ से निकलती गई और वे धीरे- धीरे किसान मज़दूर होते चले गये। जंगलों से उनके गहरे रिश्ते को भी औपनिवेशिक हमले ने तोड़ दिया। इसके पहले वे भोजन ईंधन और पशुओं के लिए चारा आदि जंगलों से जुटाते थे, जहाँ उनका जीवन पूरी तरह स्वच्छंद था। खेती के उनके अपने तरीके थे। वे जगह बदल- बदल कर 'झूम ' और 'पडु' विधियों से खेती किया करते थे। यानि जब उन्हें लगता था कि उनके खेत अब उपजाऊ नहीं रह गये तो वे जंगल साफ कर खेती के लिए नई जमीन तैयार कर लेते थे। लेकिन औपनिवेशिक राज ने सब कुछ बदल दिया और जंगली भूमि, वन उत्पादों व गांवों की जमीन के इस्तेमाल पर पूरी तरह से रोक लगा दी गयी।[17] आदिवासी इलाकों में ब्रिटिश सरकार द्वारा नवीन आबकारी कर वसूल किये जाने लगे। यहाँ तक कि नमक व अफीम पर भी कर लगाये गये। १८२२ में चावल की कम नशीली शराब पर उत्पादन शुल्क लगा दिया गया जिसे आदिवासी अपने प्रयोग के लिए तैयार करते थे और इसी आधार पर १८३० में प्रति घर के हिसाब से चार आना कर वसूल किया जाने लगा। १८२७ में पोस्त की खेती जबरन शुरू की गयी। इससे बेचैनी बढ़ती गयी।[18]

भू राजस्व के नये तरीकों (जैसे -स्थायी, रैयतवारी ,महालवाड़ी) ने बाज़ार अर्थव्यवस्था 'को जन्म दिया तथा पुरानी प्रचलित नीति जैसे चारागाह और वनों के परम्परागत सामुदायिक अधिकारों को नष्ट कर दिया गया। प्रो बिपिनचंद्र ने जिक्र किया है कि लगान वसूलने वाले लोग और महाजनों जैसे सरकारी बिचौलिए और दलाल आदिवासी का शोषण तो करते थे, जबरन बेगार भी करते थे।[19] इस तरह की सामाजिक विषमता कोई नया तथ्य न थी, किन्तु साम्राज्यवाद ने नए तरह का ध्रुवीकरण पैदा कर दिया। यह ध्रुवीकरण अब वैसे लोगों के बीच हो गया था जो भूमि हथिया चुके थे। दूसरी ओर वह वर्ग था, जिनके पारम्परिक अधिकार छीने जा रहे थे। इस विषमता ने नई समस्याओं को जन्म दिया। आमीर-गरीब के नए वर्ग विभाजन के कारण तनाव बढ़ रहा था और आदिवासी क्षेत्रों में बाहर से जाकर बसने वाले साहूकार और महाजनों द्वारा निर्मम शोषण इसका प्रमुख कारण था। अंग्रेजों ने भारतीयों की सामाजिक व्यवस्था एवं रीतिरिवाजों में हस्तक्षेप किया। विलियम बैंटिंग ने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए कानून बनाये जो जनजाति के लिए भी प्रभावी थे। आदिवासियों में इसका विरोध होने लगा। उड़ीसा में नर बलि रोकने के प्रयास का विरोध किया, भीलों ने भी डाकन प्रथा रोकने का प्रतिकार किया था। दूसरी ओर ईसाई धर्म प्रचारक आदिवासी क्षेत्रो में जाने लगे। वस्तुतः ईसाई मिशनरियों की घुसपैठ को ब्रिटिश शासकों ने बढ़ावा दिया।[20]

---

[17]चंद्र, विपिन, वही, पृ-14

[18] चंद्र, विपिन, वही, पृ-17

[19] चंद्र, विपिन, वही, पृ-14

[20] चंद्र, विपिन, वही, पृ-14

संथालों के विद्रोहों का जिक्र करते हुए कहा गया है कि वे लोग रेलवे लाइन का कार्य शुरू होने से भी आतंकित हो गये. यहाँ तक कि जो लोग इस कार्य में मज़दूरी कर रहे थे उनका भी यही अनुमान था कि इन्हें ठगा जा रहा है।[21] यद्यपि आदिवासियों द्वारा औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध किये गये विद्रोहों को सफल नहीं होने दिया, किन्तु इन विद्रोहों ने लोगों में एक जागृति की भावना पैदा की। यहाँ हम प्रमुख आदिवासी विद्रोहों की चर्चा करेंगे।

4.1 **खासी विद्रोह (1829)**

बंगाल प्रदेश के पूर्व में जयंतियाँ और पश्चिम में गारो पहाड़ियों के बीच **3500** वर्ग मील के पहाड़ी अंचल में बहादुर व लड़ाकू खासी लोग निवास करते थे। **1765** में सिलहट इलाके पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। अंग्रेजों के अधिकार से पूर्व खासियों के तीस अलग-अलग शक्ति सम्पन्न राज्य थे। प्रत्येक राज्य की अपनी एक परिषद थी और परिषद की अनुमति के बिना राजा कोई कार्य नहीं कर सकता था। डेविड स्काट का सहायक कैप्टेन हनइट उनकी परिषद की एक ऐसी ही बैठक में उपस्थित था। उनकी व्यवस्थित औचित्यपूर्ण और अनुशासन पूर्ण दो दिन की बहस और निर्णय को देखकर उसने स्वीकार किया कि किसी यूरोपीय समाज में इससे अलग उत्तम पद्धति उसने नहीं देखी।[22] उनकी इस जनतंत्रात्मक व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता थी। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने ऐसी जाति को पराधीन बनाने का प्रयास किया तब तक उनका विद्रोही बन जाना स्वाभाविक था। प्रथम बर्मा युद्ध के उपरांत ब्रह्मपुत्र नदी घाटी पर **1824** में अँग्रेजों का अधिकार हो गया, इस क्षेत्र को सिलहट से जोड़ने के लिए एक सड़क बनाने की योजना बनाई गई। असम और सिलहट को खासी पहाड़ियों से होकर जोड़ने वाली सड़क का समाजिक महत्व था। डेविड स्काट की मान्यता थी कि इस अंचल में अंग्रेजों का प्रभाव स्थापित हो जाने से सिलहट की सीमा पर अशांति पैदा करने वाले खासिया सरदार डट जायेंगे, उन पर ब्रिटिश सरकार का आतंक छा जायेगा।[23]

1827 में अनेक खासी मुखियाओं से वार्ता की गई , किंतु अंग्रेजों के अहंकार ने खासियों में असंतोष पैदा किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों द्वारा खासी मजदूरी की जबरन भर्ती का भी विरोध किया। सड़क दक्षिण असम के बारदुआर से प्रारम्भ होनी थी। छतरसिंह को ब्रिटिश सरकार ने इस प्रवेश का जमींदार नियुक्त कर रखा था, उसने सड़क बनाने की अनुमति प्रदान कर दी और इस कार्य में वांछित सहयोग का भी वायदा किया। किंतु ननक्लों के प्रमुख तीरथसिंह जो अंग्रेजों का एवं छत्तरसिंह का विरोधी था खासियों पर काफी प्रभाव था। उसने सड़क निर्माण तथा ननक्लों में अंग्रेजों के विश्राम के लिए बने सेनीटोरियम एवं बंगलों आदि के निर्माण को अपनी जाति के सादे जीवन पर आघात पहुँचाने वाला कार्य माना। खासी पहाड़ियों के छत्तीस छोटे-छोटे राज्यों के राजाओं के तिरूतसिंह को खासी क्षेत्र एवं असम से अंग्रेजों को निष्कासित करने में सहायता देने का आश्वासन दिया। **5** मई **1829** को मोलिम (खासिया राज्य) के राजा बारमानिक के निर्देश पर खासियों ने विद्रोह कर दिया। उसके इशारे पर गारो युवकों के दल ने अंग्रेजों और बंगाली अधिकारियों को ननक्लों के सेनीटोरियम में घेर लिया । इस घटना से तनाव बढ़ गया और लेफ्टिनेंट बेडिग फील्ड मारा गया,

---

[21] , वही, पृ-108

[22] चंद्र, विपिन ,आधुनिक भारत का इतिहास , हि. का. नि. देल्ली, पृ.107

[23] सिंह ,अयोध्या , भारत का मुक्ति संघर्ष, हि. का. नि. देल्ली, पृ. 3

अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार बेडिग फील्ड की एक कान्फरेंस में बुलाया गया और ज्यों ही वह पहुँचा उसे मार दिया गया।[24] बाद में वे इस क्षेत्र के पॉलिटिकल एजेंट डेल्डि स्काट को पकड़ने के लिए चेरापूंजी की ओर बढ़े। इसके साथ ही समस्त खासी क्षेत्र में विद्रोह भड़क उठा। हजारों खासी लोग इस दल में सम्मिलित हो गए। गारो पहाड़ियों के इलाके में भी विद्रोह फैल गया। किंतु अंग्रेजों ने धीरे-धीरे स्थिति पर नियंत्रण कर लिया और एक के बाद एक खासियों के गावों को नष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने आर्थिक नाकेबंदी का भी प्रयास किया। लगभग चार वर्ष तक दोनों पक्षों में छिटपुट संघर्ष होता रहा। जनवरी 1833 ई. में तिरूतसिंह ने उसे मृत्युदंड देने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर दिया। अन्य खासी राजाओं ने भी इस तरह आत्मसमर्पण कर दिया एवं खासी विद्रोह दबा दिया गया।

4.2 खामती विद्रोह

खामती जाति का मूल निवास बर्मा में इरावदी नदी घाटी का बोरखामती प्रदेश था। वहाँ से चलकर आसाम में अहोम राजा की अनुमति से पूर्वांचल में बस गये और वहाँ छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया। 1826 की संधि द्वारा खामती लोगों को ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने शासक के अधीन रहने की अनुमति प्रदान की तथा 200 सैनिक रखने की स्वीकृति भी मिल गई। 1830 में सिंगफो जाति ने असम के पूर्वी भाग में अंग्रेजों पर हमला किया था। उस समय खामती लोगों ने अंग्रेजों का साथ दिया। किंतु न्याय व्यवस्था, राजस्व वसूली अंग्रेज अधिकारियों को सौंप देने एवं अनेक टैक्स लगा दिये जाने से, खामती सरदार खता गोहाई, तओबा ओटाई, रूनू ओटाई, कक्पटेन ओटाई आदि अंग्रेजों से असंतुष्ट हो गये। उन्होंने सिंगफी सरदार को अंग्रेजों से समझौता न करने के लिए उकसाया। 1839 में खामती लोगों ने अचानक अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया और सदियो स्थित पूरी अंग्रेज रेजीमेंट को साफ कर दिया। मेजर ह्नाइट मारा गया और ब रेक में रखी बंदूकें एवं तोपें आदि नष्ट कर दी गईं। कंपनी सरकार ने एक अलग सेना विद्रोहियों का पता लगाने हेतु भेजीं और विद्रोही सरदारों को गिरफ्तार करने के लिए बड़े-बड़े पुरस्कारों की घोषणा की गयी। अंत में, 1843 में सरदारों की आपसी फूट ने खामती लोगों को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया। अंग्रेजों ने बाद में खामती लोगों को अलग-अलग बसाया जिससे वे पुन: संगठित न हो सके।

4.3 नागा विद्रोह

सामान्यत: जिन्हें हम नागा नाम से जानते हैं एक प्रजाति का द्योतक न होकर विविध उपजातियों का मिश्रण है उनकी अलग-अलग भाषा, रीतिरिवाज एवं नामों से इस तथ्य का अभिज्ञान होता है। कंपनी सरकार नागा प्रदेश पर भी अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती थी इसलिए थेम्बर्टन एवं जेनकिंस ने नागा लोगों के बारे में विस्तृत जानकारी हासिल की । 1835 और 1851 के मध्य नागा पहाड़ी पर अंग्रेजों ने दस बार चढ़ाई की।[25] अंग्रेजी हमले के प्रतिक्रिया स्वरूप 1849 में खोनोमा और मेजुमा गाँव के नागाओं ने दीमापुर के दक्षिण

[24] विल्सन ,मिल्स हिस्ट्री ऑव असम, पृ. 321

[25] सिंह ,अयोध्या, वही, पृ-279

समगुतिंग की पुलिस चौकी के दरोगा भीमयक को मार दिया। 1850-54 में आक्रमण करके अंग्रेजों ने नागाओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया, किंतु उन्होंने भयभीत होकर समर्पण नहीं किया, अपितु वे अंग्रेजी क्षेत्र पर बराबर छुटपुट हमले करते रहे। 1866 में ब्रिटिश सरकार ने आगामी नागाओं के क्षेत्र पर अधिकार कर जिला घोषित किया तथा समगुतिंग में इसका कार्यालय बनाया। इसी तरह 1875 में लहोटा नागाओं के इलाके पर अधिकार कर लिया एवं 1889 में अवो नागाओं का क्षेत्र भी हस्तगत कर लिया।

4.4 कोल विद्रोह

बंगाल के छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल जनजाति निवास करती है। इस जाति की अनेक शाखायें हैं जिनके अलग-अलग मुखियाओं के स्वतंत्र राज्य थे। इनका "मुख्या" राजा कहा जाता था। ताराचंद ने लिखा है कि कोलो ने इसलिए विद्रोह किया (1831-32) कि उनके गाँव को कोल मुखियों के हाथ से छीन कर प्रदेशी सिक्खों और मुसलमानों को दिया जा रहा था।[26] छोटानागपुर के आदिवासी बाहरी लोगों को अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानते थे। इस विद्रोह का एक अन्य कारण भूमि प्रबंध लगान वसूली का तरीका एवं साहूकारी व्यवस्था भी थी। कहा जाता है कि दरअसल भूमि संबंधी असंतोष ही इसका मूल कारण था। 'हो' और मुण्डों के बीच पुरानी ग्राम्य समाज व्यवस्था चली आ रही थी। सात से बारह गाँवों पर एक पीर होता था। इसका प्रधान या नेता "मानकी" कहलाता था। वह इन गाँवों के लगान के प्रति सरकार या जमींदार के प्रति जिम्मेदार था। वह गाँवों के मुखियों के कार्यों की निगरानी करता था। ये मुखिया 'मुंडा' कहलाते थे। ये मुंडे पुलिस का भी काम करते और अपने-अपने गाँवों का प्रतिनिधित्व करते थे।[27]

अंग्रेजों ने कर अदा करने के लिए आदिवासी राजाओं को बाध्य कर दिया। कर का भुगतान न किए जाने पर राजा को बदलना आम बात थी। दूसरी ओर आदिवासी अपने क्षेत्र में विदेशियों को प्रवेश करने नहीं देना चाहते थे। कोल प्रजाति की एक शाखा 'होम' ने अपने प्रदेश में बाहरी व्यक्तियों को घुसने से रोकने के लिए अपनी सीमाओं पर प्रबंध किये। पोराइट के राजा ने विवश होकर कर देना स्वीकार कर लिया था। परंतु होश ऐसा नहीं चाहते थे। 1820 में पौलिटिकल एजेंट के कोल्हन और चौबीसा क्षेत्र में प्रवेश करने पर उसका सशस्त्र विरोध उनकी उपर्युक्त नीति का अंग था। 1827 में उनके अनेक ग्राम जला कर नष्ट कर दिये गये और उन्हें जमींदारों को कर देने, कंपनी की प्रभुसत्ता स्वीकार करने को विवश किया। जमींदारों की लगान का भुगतान न करने पर जमीनें नीलाम की जाने लगीं और मैदानी भाग से आए लोगों को जमीनों पर अधिकार मिलने लगा। आदिवासियों पर उनके द्वारा निर्मित शराब पर उत्पादन शुल्क थोप दिया गया और उन्हें पोस्त की खेती करने को बाध्य किया गया। कंपनी कानूनों का उल्लंघन करने पर आदिवासियों को कचहरियों में ले जाया जाने लगा। इन परिस्थितियों ने कोलियरों को संघर्ष करने के लिए मजबूर किया। विद्रोह का एक अन्य कारण आदिवासी स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार भी रहा है। ऐसा सभी धर्म की स्त्रियों के साथ किया जाता था।[28]

---

[26] ताराचंद ,भारतीय स्वंतंत्रता आंदोलन का इतिहास ,जी , पृ-3

[27] वही, पृ-5

[28] सिंह ,अयोध्या , वही, पृ-222

उपर्युक्त घटनाओं से कोलों का असंतोष तक पहुँच गया। रांची, सिंहभू म, पालामड और मानभूमि आदि जिलों के सभी आदिवासियों ने 1831 में एक साथ विद्रोह कर दिया। विद्रोह का प्रारम्भ हिंसा और लूटपाट से हुआ। कहा जाता है कि इस विद्रोह में लगभग एक हजार गैर आदिवासियों को मार डाला गया। अंग्रेजी सेना 'रामगढ़ बटालियन' विद्रोह का दमन करने के लिए भेजी गई और दो माह तक संघर्ष के बाद 1832 में बड़ी कठिनाई से विद्रोह को दबाने में सफलता मिली। जमींदारों ने भी इसे दबाने हेतु अपनी सेनाएँ भेजी थीं। संघर्ष में आदिवासी नेता बुप्लो भगत, उसके बेटे तथा 150 अन्य आदिवासी मारे गये। कंपनी सेना के 16 लोग मरे तथा 44 घायल हुए। विद्रोहियों के एक वर्ग ने तब भी समर्पण नहीं किया था। अत: 1836 एवं 1837 में पुन: उनके विरुद्ध सेना भेजी गई।

4.5 खौड़ विद्रोह

उड़ीसा के निकटवर्ती प्रदेश खौड़माल क्षेत्र के आदिवासी खौड़ कहे जाते हैं । लगभग 800 वर्ग मील क्षेत्र में खौड़ लोगों के निवास हैं। 1846 से 1855-56 के मध्य गुमसर के खौड़ और बौड़ तथा पार्लियाखेमदी के सवार लोगों ने विद्रोह किये। इन आदिवासी आंदोलनों का मुख्य कारण पाश्चात्य इतिहासकारों के अनुसार अंग्रेज प्रशासकों द्वारा खौड़ों में प्रचलित नरबलि तथा 'मोरिया' को रोकने का प्रयास था। जिन मनुष्यों की बलि दी जाती थी वे "मोरिया" कहलाते थे। कहा गया है कि बदलती हुई परिस्थितियों में बने दबावों और अनिश्चितता ने खौड़ों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे "मोरिया" के जरिये भगवान को खुश कर सकें ताकि हल्दी एवं अन्य फसलें अच्छी हो सकें। यह एक प्रकार की पृथ्वी पूजा का अंग था। कहा गया है कि सरकार इस प्रथा को रोकने के लिए कृत संकल्प थी। किंतु तथ्यात्मक स्थिति कुछ और ही थी। वस्तुत: अपने इलाके में बाहर से बसने वाले व्यक्तियों की संख्या में लगातार वृद्धि के कारण खौड़ों में असंतोष बढ़ रहा था। वे किसी को राजस्व भुगतान नहीं करते थे। खौड़ों का क्षेत्र बोद और दसपतला रियासतों के अधीनस्थ माना जाता था। किंतु खौड़ न तो बोद और दसपलता राजाओं को एवं न ही अंग्रेजों को अपना स्वामी मानने को तैयार थे। उनको यह आशंका थी कि अंग्रेज उनकी जमीन हड़प लेंगे, बेजार ली जाएगी और उनसे नए टैक्स वसूल किए जाएंगे।

सम्भवत: कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में 1846 के प्रारम्भ में उन्होंने विद्रोह कर दिया। एक दिन अंग्रेज कप्तान मेकफरसन के शिविर पर सहसा आक्रमण किया। चक्र बिसोइ उनका नेतृत्व करने लगा तथा बड़ी संख्या में लोगों ने आंदोलन में भाग लिया। खौड़ विद्रोह को दबाने के लिए 1840 में मद्रास रेजीमेंट का दस्ता भेजा गया। खौड़ों के गाँव आग के हवाले कर दिए गए। किंतु खौड़ों ने हिम्मत नहीं हारी, डटकर अंग्रेजों का मुकाबला किया। 1855 में खौड़ आंदोलन को दबा दिया गया।

4.6 मुंडा विद्रोह

मुंडा आदिवासियों का विद्रोह 1874 से 1901 के मध्य हुआ। 1895 के बाद इसका नेतृत्व बिरसा मुंडा ने किया। अत: इसे बिरसा मुंडा विद्रोह भी कहा जाता है। दक्षिण बिहार के छोटा-नागपुर इलाके के लगभग 400 वर्ग मील क्षेत्र में मुंडा निवास करते थे। प्रो. बिपिनचंद्र ने लिखा है कि मुंडा जाति में सामूहिक खेती का प्रचलन

था, लेकिन जागीरदारों, ठेकेदारों, बनियों और सूदखोरों ने सामूहिक खेती की परंपरा पर हमला बोला। मुंडा सरदार 30 वर्ष तक सामूहिक खेती के लिए लड़ते रहे। [29] मुंडा अंचल की जमीनें मुंडा लोगों के हाथ से निकल कर साहूकारों एवं जमीदारों के हाथ में जा रही थीं। ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था ने उन्हें कृषक से मजदूर बनने को बाध्य किया। इस कारण उनमें धीरे-धीरे असंतोष बढ़ने लगा। ब्रिटिश शासन जमींदारों एवं साहूकार वर्ग के उत्थान का एक महत्वपूर्ण कारक था। इस काल में इन वर्गों को आदिवासियों के शोषण की पूरी तरह छूट थी। मुंडों ने अपने सरदारों के नेतृत्व में इन लोगों के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया। उनका यह उपद्रव "सरजमी लड़ाई" के नाम से प्रसिद्ध था। शीघ्र ही तिरसा ने अंग्रेजी भूराजस्व व्यवस्था का विरोध करना शुरू किया। सुरेभासिंह की मान्यता है कि भूमि की समस्या मुंडाओं के असंतोष तथा विद्रोह का मूल कारण थी। स्थायी बंदोबस्त ने मुंडाओं को भी प्रभावित किया। वनों से लकड़ी काटने के प्रतिबंध संबंधी कानून ने उन्हें अपने परंपरागत अधिकार से वंचित कर दिया था। जंगल साफ करके खेती नहीं की जा सकती थी। वनों में अपने पालतू जानवरों को चराने पर प्रतिबंध था। इस प्रकार सुरेभासिंह के विचार से उनका विद्रोह मुख्य रूप से सामाजिक आर्थिक शक्तियों के विरुद्ध था। अत: बिरसा विद्रोह को केवल एक धार्मिक आंदोलन नहीं कहा जा सकता। इस विद्रोह में महिलाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी।

4.7 भील विद्रोह

महाराष्ट्र के व न प्रदेशों, गुजरात, मध्यप्रदेश एवं दक्षिणी राजस्थान में भील जनजाति बड़ी संख्या में निवास करती है। 1857 के पूर्व भीलों के दो अलग-अलग विद्रोह हुए। महाराष्ट्र के खानदेश में भील काफी संख्या में निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर में विंध्य से लेकर दक्षिण पश्चिम में सहाद्रि एवं पश्चिमी घाट क्षेत्र में भीलों की बस्तियाँ देखी जाती हैं। 1816 में पिंडारियों के दबाव से ये लोग पहाड़ियों पर विस्थापित होने को बाध्य हुए। पिंडारियों ने उनके साथ मुसलमान भीलों के सहयोग से क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया। इसके अतिरिक्त सामंती अत्याचारों ने भी भीलों को विद्रोही बना दिया। 1818 में खानदेश पर अंग्रेजी आधिपत्य की स्थापना के साथ ही भीलों का अंग्रेजों से संघर्ष शुरू हो गया। कैप्टेन बिग्स ने उनके नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और भीलों के पहाड़ी गाँवों की ओर जाने वाले मार्गों को अंग्रेजी सेना ने सील कर दिया, जिससे उन्हें रसद मिलना कठिन हो गया। दूसरी ओर एलफिंस्टन ने भील नेताओं को अपने पक्ष में करने का प्रयास किया और उन्हें अनेक प्रकार की रियायतों का आश्वासन दिया। पुलिस में भर्ती होने पर अच्छे वेतन दिये जाने की घोषणा की। किंतु अधिकांश लोग अंग्रेजों के विरुद्ध बने रहे। 1819 में पुन: विद्रोह कर भीलों ने पहाड़ी चौकियों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। अंग्रेजों ने भील विद्रोह को कुचलने के लिए सतमाला पहाड़ी क्षेत्र के कुछ नेताओं को पकड़ कर फाँसी दे दी। किंतु जन सामान्य की भीलों के प्रति सहानुभूति थी। इस तरह उनका दमन नहीं किया जा सका। 1820 में भील सरदार दशरथ ने कम्पनी के विरुद्ध उपद्रव शुरू कर दिया। पिण्डारी सरदार शेख दुल्ला ने इस विद्रोह में भीलों का साथ दिया। मेजर मोटिन को इस उपद्रव को दबाने के लिए नियुक्त किया गया, उसकी कठोर कार्रवाई से कुछ भील सरदारों ने आत्मसमर्पण कर दिया। 1822 में भील नेता हिरिया ने लूट-पाट द्वारा आतंक मचाना शुरू किया, अत: 1823 में कर्नल राबिन्सन को विद्रोह का दमन करने के लिए नियुक्त किया।

---

[29] चंद्र, विपिन,भारत का स्वंतंत्रता संघर्ष,पृ-17, हि. का. नि. देल्ली,

उसने बस्तियों में आग लगवा दी और लोगों को पकड़-पकड़ कर क्रूरता से मारा। 1824 में मराठा सरदार त्रियंबक के भतीजे गोड़ा जी दंगलिया ने सतारा के राजा को बगलाना के भीलों के सहयोग से मराठा राज्य की पुनर्स्थापना के लिए आह्वान किया। भीलों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया एवं अंग्रेज सेना से भिड़ गये तथा कम्पनी सेना को हराकर मुरलीहर के पहाड़ी किले पर अधिकार कर लिया। परंतु कम्पनी की बड़ी बटालियन आने पर भीलों को पहाड़ी इलाकों में जाकर शरण लेनी पड़ी। तथापि भीलों ने हार नहीं मानी और पेडिया, बून्दी, सुतवा आदि भील सरदार अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष करते रहे। कहा गया है कि लेफ्टिनेंट आउट्रम, कैप्टेन रिगबी एवं ओवान्स ने समझा बुझा कर तथा भेद नीति द्वारा विद्रोह को दबाने का प्रयास किया। आउट्रम के प्रयासों से अनेक भील अंग्रेज सेना में भर्ती हो गये और कुछ शांतिपूर्वक ढंग से खेती करने लगे। उन्हें तकाबी ऋण दिलवाने का आश्वासन दिया।

5. आदिवासी विद्रोह के असफलता के कारण

आदिवासियों के इन विद्रोहों की पूर्व योजना नहीं थी और न ही समस्त प्रजाति के लोगों का इनमें सहयोग लिया जा सका। वस्तुतः इन लोगों को अपने उद्देश्य का स्पष्ट ज्ञान नहीं था। जिसकी प्राप्ति के लिए वे अपने को संगठित कर पाते। आदिवासियों को योग्य नेतृत्व नहीं मिल पाया। दूसरी ओर सरकार ने अंग्रेज सेना के प्रशिक्षित एवं योग्य अधिकारियों को इन विद्रोहों का दमन करने के लिए नियुक्त किया। उन्होंने योजनावद्ध तरीके से इन विद्रोहों को दबाया। आदिवासियों के पास केवल तीर-कमान थे, जिनके बल पर ब्रिटिश सेना से मुकाबला कर पाना मुश्किल था। यद्यपि इन विद्रोहों का दमन कर दिया गया, किन्तु इन आंदोलनों ने सभ्य समाज को भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

6. परिणाम

भले ही ब्रिटिश भारत में (1757-1857) किसान और आदिवासी आन्दोलन असफल रहा। लेकिन इसका दूरगामी परिणाम भविष्य में देखे गए। ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई जा रही आर्थिक नीति का विरोध धीरे-धीरे किसान, आदिवासी वर्ग के अलावा एनी समुदायों वर्गों के बीच पनपने लगा अर्थात विद्रोह का स्वर गूँजने लगा और सभी समुदाय के लोग ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संगठित होने लगे। जिसके परिणामस्वरूप 1857 में ब्रिटिश शासक कम्पनी तथा ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत किये गए सभी प्रकार के भू-राजस्व प्रबंधन जैसे- स्थायी बंदोबस्त, रैय्यतवाडी एवं महालावाडी पद्धति में भू-राजस्व की पट अधिकतम रूप में निर्धारित की गई। तत्कालीन भारत में कृषि अधिकाँश जनसंख्या की आजीविका का प्रमुख स्रोत थी, इसलिए इस औपनिवेशिक राजस्व प्रबंधन में कृषकों की विपन्नता को बढ़ा दिया, जिसके परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में कृषक विद्रोह शुरू हो गए।

आदिवासी समुदाय और औपनिवेशिक सत्ता के बीच संघर्ष का मुख्य कारण ब्रिटिश शासन द्वारा उनकी विशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में हस्तक्षेप किया जाना था। इन जनजातीय आंदोलनों का चरित्र अन्य सामुदायिक आंदोलनों से इस अर्थ में भिन्न था की ये अत्यधिक हिंसक, बिलकुल अलग-अलग और एकाकी थे। अंततः कालांतर में कम्पनी या ब्रिटिश शासक को अपनी भू राजस्व सम्बन्धी नीति के साथ-साथ, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक नीति में बदलाव करने पड़े।

7. निष्कर्ष

हम कह सकते हैं ब्रिटिश शासन या कंपनी शासन के विरूद्ध किसान और आदिवासी समुदायों के विरोध का मुख्य कारण उनके द्वारा अपनाई गई शोषणकारी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक नीतियाँ थीं जिसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे सभी वर्ग, समुदाय में विद्रोह के स्वर उठने लगे और अंतत: 1857 की क्रान्ति के द्वारा कम्पनी शासन के होश-ठिकाने आ गए जिसके बाद कंपनी शासन द्वारा अपनी नीतियों में आंशिक रूप से बदलाव किए गए। लेकिन यह बदलाव पर्याप्त नहीं था।

8. सँदर्भ सूची :

(1) Dhanagare ,D.N (1991), Peasant Movements in India, 1920-1950,Oxford University Press,Delhi.

(2)Bandyopadhyay, S, (2009),From Plassey to Partition: A History of Modern India,Orient Longman,New Delhi

(3)Seal, A.(1968), The Emergence of Indian nationalism:Competition and elaboration in later nineteenth century Cambridge; Cambridge university press.

(4)Hardiman, David, (1981), Introduction to peasant resistance in India, 1858-1914,Oxford University Press. Delhi.

(5) राय ,सत्या, एम.(1983),भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद (सं), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय , दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली

(6) चन्द्र, विपिन,भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,हि. का. नि. देल्ली.

(7) ताराचंद ,भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास ,जी.

(8) चन्द्र, विपिन ,आधुनिक भारत का इतिहास , हि. का. नि. दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली

(9) सिंह ,अयोध्या , भारत का मुक्ति संघर्ष, हि. का. नि, दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली